

श्रीमद्भगवद्गीता का 'आनंदवाद' और भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS): समकालीन हिंदी साहित्य में परिकल्पित एक स्वस्थ एवं संतुलित समाज

डॉ. रुचि पालीवाल

असिस्टेंट प्रोफेसर

गुरु नानक गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, उदयपुर

सारांश

"अक्षर-अक्षर में अमर, जो चेतना का सार है, यह बोध की वह रश्मि है, जो तिमिर के पार है।

जहाँ कर्म का सौंदर्य ही, आनंद का आधार बने, साहित्य के उस क्षितिज में, गीता ही बस विस्तार है।"

भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) का इतिहास अत्यंत प्राचीन एवं गौरवशाली है, जिसका मुख्य ध्येय सदैव से ही मानवीय चेतना का सर्वांगीण विकास रहा है। इस परंपरा के केंद्र में श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसे अक्षय ऊर्जा पुंज के रूप में विद्यमान है, जो जीवन के जटिलतम द्वंद्वों के मध्य 'आनंद' की खोज का मार्ग प्रशस्त करती है। वर्तमान २१वीं सदी के संक्रमण काल में, जहाँ एक ओर तकनीकी एवं भौतिक उन्नति अपने शिखर पर है, वहीं दूसरी ओर मानवीय अंतर्मन तनाव, अवसाद और दिशाहीनता के गहरे कुहासे में घिरा हुआ है। ऐसी स्थिति में गीता का 'आनंदवाद' केवल एक दार्शनिक विचार न रहकर एक व्यावहारिक औषधि के रूप में उभरता है। प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य स्वर इसी आनंद की खोज और उसकी स्थापना पर केंद्रित है।

गीता का 'आनंदवाद' किसी क्षणिक इंद्रिय सुख का नाम नहीं है, अपितु यह 'स्थितप्रज्ञता' और 'निष्काम कर्म' के समन्वय से उत्पन्न वह मानसिक अवस्था है, जिसे प्राप्त करने के पश्चात बाहरी संसार की सफलता या विफलता मनुष्य के आंतरिक संतुलन को विचलित नहीं कर पाती। जब भगवान कृष्ण 'योगः कर्मसु कौशलम्' (गीता, २.५०) का सूत्र देते हैं, तो वे वास्तव में कर्म की उस पराकाष्ठा की ओर संकेत करते हैं जहाँ कर्म स्वयं में एक उत्सव बन जाता है। यही वह बिंदु है जहाँ भारतीय ज्ञान परंपरा और समकालीन साहित्य का मिलन होता है। साहित्य सदैव से ही दर्शन का सुगम स्वरूप रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास को देखें तो जयशंकर प्रसाद जैसे मनीषी साहित्यकारों ने 'कामायनी' के माध्यम से इसी

आनंदवाद को एक आधुनिक सामाजिक आधार प्रदान किया। प्रसाद जी का यह मानना था कि जब मनुष्य अपनी व्यक्तिगत संकीर्णताओं से ऊपर उठकर समरसता को प्राप्त करता है, तभी वह वास्तविक आनंद का अधिकारी बनता है। उनका यह काव्यमयी विचार वस्तुतः गीता के ही 'समत्व' भाव का एक साहित्यिक विस्तार है।

आज की नवयुवा पीढ़ी के संदर्भ में इस शोध की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। आधुनिक युवा, जो निरंतर प्रतिस्पर्धा और उपलब्धियों के पीछे भाग रहा है, वह अक्सर प्रक्रिया (Process) को भूलकर केवल परिणाम (Result) के दबाव में जीने का अभ्यस्त हो गया है। गीता का 'अनासक्ति योग' उन्हें सिखाता है कि कार्य की कुशलता उसके परिणाम की चिंता में नहीं, बल्कि वर्तमान क्षण में पूर्ण एकाग्रता के साथ जीने में है। यह शोध-पत्र यह स्थापित करता है कि IKS का यह व्यावहारिक पक्ष युवाओं को एक मानसिक सुरक्षा चक्र (Mental Safety Shield) प्रदान करता है, जो उन्हें किसी भी प्रकार के 'विषाद' से निकालकर 'प्रसाद' (आंतरिक शांति) की ओर ले जाता है। जब युवा वर्ग इस संतुलित दृष्टि को आत्मसात करेगा, तभी एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना मूर्त रूप ले सकेगी।

शोध का व्यापक आयाम यह भी स्पष्ट करता है कि स्वस्थ समाज का आधार केवल शारीरिक आरोग्यता नहीं, बल्कि वैचारिक एवं मानसिक शुद्धि है। समकालीन हिंदी साहित्य ने गीता के इन गूढ़ सूत्रों को कविताओं, निबंधों और आख्यानों के माध्यम से जन-सामान्य के जीवन से जोड़ा है। साहित्यकारों ने यह सिद्ध किया है कि आनंद कोई बाहरी वस्तु नहीं जिसे अर्जित किया जाए, बल्कि यह हमारे भीतर का वह स्वभाव है जिसे केवल 'अज्ञान' के आवरण ने ढका हुआ है। भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्देश्य इसी आवरण को हटाना है। निष्कर्षतः, यह शोध-पत्र यह प्रतिपादित करता है कि श्रीमद्भगवद्गीता का 'आनंदवाद' ही वह सेतु है जो प्राचीन ज्ञान को आधुनिक आवश्यकताओं से जोड़ता है। यह मात्र एक शोध का विषय नहीं, बल्कि एक 'जीवन-दृष्टि' है। यदि हम अपने शैक्षिक और सामाजिक ढांचे में IKS के इन मूल्यों को पुनः स्थापित कर सकें, तो न केवल भारत बल्कि वैश्विक समाज एक स्थायी शांति और अखंड आनंद की अनुभूति कर सकेगा। साहित्य की सृजनात्मकता और गीता की तार्किक गहराई का यह संगम ही मानवता के भविष्य का वास्तविक मार्गदर्शक है, जो एक ऐसे संतुलित समाज की नींव रखेगा जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म में सौंदर्य और जीवन में आनंद का अनुभव कर सकेगा।

बीज शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS), श्रीमद्भगवद्गीता, आनंदवाद, समकालीन हिंदी साहित्य, मानसिक स्वास्थ्य, निष्काम कर्म, युवा पीढ़ी, डिजिटल भटकाव, संतुलित समाज।



प्रस्तावना:

"पुरुषार्थ की इस पावन भूमि, सुख का नया विधान खिले, जहाँ कर्म बने जब योग हमारा, तब मन को विश्राम मिले।

भारतीय मनीषा का यह गौरव, आनंद-सुधा बरसाता है, जब 'स्व' से जुड़ता मानव-मन, तब शाश्वत सुख को पाता है।"

भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) आदि काल से ही मानवीय चेतना के उस उत्कर्ष की गाथा रही है, जहाँ जीवन का अंतिम ध्येय मात्र भौतिक अस्तित्व की रक्षा नहीं, बल्कि 'परम आनंद' की प्राप्ति रहा है। भारतीय मनीषा ने सुख की अवधारणा को केवल इंद्रियजन्य तृप्ति तक सीमित न रखकर उसे एक गहन आत्मिक अनुभव के रूप में परिभाषित किया है। हमारे ऋषियों ने यह स्पष्ट किया कि वास्तविक सुख बाह्य जगत की वस्तुओं में नहीं, अपितु अंतर्मन के संतुलन और 'स्व' में स्थित होने में निहित है। इसी उदात्त परंपरा के केंद्र में 'आनंद' को एक मौलिक पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जहाँ धर्म, अर्थ और काम की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब वे मनुष्य को मानसिक शांति और शाश्वत आनंद की ओर अग्रसर करें। श्रीमद्भगवद्गीता इसी महान परंपरा का वह व्यावहारिक शास्त्र है, जो कुरुक्षेत्र जैसे भयावह युद्धक्षेत्र के मध्य भी आनंद के मार्ग को प्रशस्त करता है।

आज के इस संक्रमण काल में, जहाँ वैश्वीकरण और सूचना क्रांति ने सुख के भौतिक साधनों की बाढ़ ला दी है, वहीं मानवीय अंतर्मन शांति और संतोष के लिए निरंतर तरस रहा है। विशेषकर नवयुवा पीढ़ी, जो आधुनिक जीवनशैली की गलाकाट प्रतिस्पर्धा और प्रदर्शन के अंतहीन दबाव में जी रही है, वह अक्सर सफलता प्राप्त करके भी 'विषाद' के गहन कुहासे में घिरी रहती है। ऐसी परिस्थिति में गीता का 'आनंदवाद' एक अनिवार्य वैश्विक आवश्यकता बनकर उभरता है। यह शोध-पत्र इस तथ्य का अन्वेषण करता है कि कैसे भारतीय ज्ञान परंपरा के ये शाश्वत सूत्र साहित्य की संवेदना के साथ जुड़कर आधुनिक समाज के सम्मुख एक 'मेंटल हेल्थ ब्लूप्रिंट' प्रस्तुत करते हैं। साहित्य ने सदैव दर्शन की जटिलताओं को अपनी सरस भाषा में ढालकर जन-सामान्य के लिए सुलभ बनाया है। इसी साहित्यिक और दार्शनिक समन्वय के माध्यम से हम एक ऐसे संतुलित समाज की परिकल्पना कर रहे हैं, जहाँ कर्म बोझ न होकर एक उत्सव बन जाए और जीवन तनाव से मुक्त होकर आनंद का एक अनवरत प्रवाह बन सके।

शोध के उद्देश्य:

- श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित 'आनंदवाद' और 'समत्व' की दार्शनिक अवधारणा को स्पष्ट करना।



Abhinavdhara

IJIS- International Journal of Innovation in Indic Studies

ISSN: 2583-5149 | Special Edition Vol. 2 | March 2026

- भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के व्यावहारिक सूत्रों (जैसे निष्काम कर्म और स्थितप्रज्ञता) की आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) के संदर्भ में प्रासंगिकता सिद्ध करना।
- जयशंकर प्रसाद और रामधारी सिंह दिनकर जैसे साहित्यकारों की कृतियों में गीता के आनंदवादी तत्वों की साहित्यिक पड़ताल करना।
- वर्तमान नवयुवा पीढ़ी की समस्याओं (तनाव, डिजिटल भटकाव) के समाधान हेतु गीता के सिद्धांतों पर आधारित एक स्वस्थ समाज का ब्लूप्रिंट प्रस्तुत करना।

शोध के प्रश्न:

- क्या गीता का 'आनंदवाद' केवल एक आध्यात्मिक विचार है या यह आधुनिक युग की मानसिक व्याधियों के लिए एक व्यावहारिक औषधि भी है?
- समकालीन हिंदी साहित्य ने गीता के गूढ़ दार्शनिक सूत्रों को सामाजिक समरसता और आनंद की प्रतिष्ठा हेतु किस प्रकार आत्मसात किया है?
- भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के सूत्र किस प्रकार युवाओं को परिणाम की आसक्ति से मुक्त कर उनकी कार्यक्षमता (Efficiency) बढ़ा सकते हैं?
- एक संतुलित समाज के निर्माण में गीता का 'युक्ताहार-विहार' और 'लोकसंग्रह' का सिद्धांत क्या भूमिका निभा सकता है?

साहित्य समीक्षा:

प्रस्तुत शोध की वैचारिक निर्मिति श्रीमद्भगवद्गीता के दार्शनिक भाष्यों और हिंदी साहित्य की कालजयी कृतियों के संगम पर आधारित है। श्रीमद्भगवद्गीता (तत्त्वविवेचनी) और डॉ. राधाकृष्णन के दार्शनिक विमर्श जहाँ 'आनंदवाद' को जीवन प्रबंधन के सूत्र के रूप में स्थापित करते हैं, वहीं जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और दिनकर का 'कुरुक्षेत्र' इसी दर्शन को 'समरसता' और 'निष्काम कर्म' के माध्यम से साहित्यिक धरातल प्रदान करते हैं। आधुनिक शोधों (यथा- नलिनी शर्मा) की समीक्षा यह स्पष्ट करती है कि भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के ये प्राचीन सूत्र वर्तमान समय के मानसिक तनाव और सामाजिक असंतुलन के निवारण हेतु पूर्णतः वैज्ञानिक एवं प्रासंगिक हैं।

गीता का दार्शनिक अधिष्ठान: 'विषाद' से 'बोध' की यात्रा

श्रीमद्भगवद्गीता का प्रादुर्भाव ही एक गहन मनोवैज्ञानिक संकट के समाधान हेतु हुआ है। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अर्जुन का धनुष 'गाण्डीव' का हाथ से गिरना, शरीर में कंपन और मन का भ्रमित होना—ये



लक्षण आधुनिक मनोविज्ञान में 'गहन अवसाद' (Clinical Depression) और 'चिंता विकार' (Anxiety Disorder) के सटीक संकेत हैं। भगवान कृष्ण ने अर्जुन के इस 'विषाद' को तिरस्कृत करने के स्थान पर उसे 'बोध' में बदलने की जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया, उसे वर्तमान संदर्भों में 'संज्ञानात्मक पद्धति' (Cognitive Method) कहा जा सकता है। जहाँ आधुनिक चिकित्सा पद्धति केवल लक्षणों का उपचार करती है, वहीं कृष्ण अर्जुन के विचारों के मूल (Roots) पर प्रहार करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि दुःख का कारण बाहरी 'परिस्थिति' नहीं, बल्कि परिस्थिति के प्रति हमारी 'भ्रांत धारणा' और 'मोह' है। जब कृष्ण अर्जुन को 'स्वधर्म' और 'आत्म-ज्ञान' का बोध कराते हैं, तो वे वास्तव में उसकी संज्ञानात्मक चेतना का पुनर्निर्माण कर रहे होते हैं, जिससे विषाद स्वतः ही विवेक के प्रकाश में विलीन हो जाता है।

इस बोध की अगली सीढ़ी 'स्थितप्रज्ञ दर्शन' है, जो मानसिक सुदृढ़ता का एक अद्भुत विज्ञान है। गीता के द्वितीय अध्याय में वर्णित 'स्थितप्रज्ञ' वह व्यक्तित्व है जिसकी बुद्धि द्वंद्वों के प्रहार से विचलित नहीं होती। आज के प्रतिस्पर्धी युग में, जहाँ युवा वर्ग छोटी-सी असफलता या लाभ-हानि में अपना मानसिक संतुलन खो देता है, वहाँ गीता का यह सूत्र कि— "दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः" (गीता, २.५६) (दुःख में उद्वेग रहित और सुख में आसक्ति रहित होना)—एक अभेद्य मानसिक सुरक्षा कवच प्रदान करता है। यह दर्शन सिखाता है कि मानसिक सुदृढ़ता बाहरी अनुकूलता पर नहीं, बल्कि आंतरिक स्थिरता पर टिकी है। जब मनुष्य सफलता और विफलता को 'समत्व' भाव से स्वीकार करना सीख जाता है, तब वह वास्तविक अर्थों में 'मानसिक आरोग्य' को प्राप्त करता है। यह 'समत्व' ही वह धुरी है जिस पर एक स्वस्थ समाज का निर्माण संभव है।

इसी अधिष्ठान का अंतिम और सबसे सूक्ष्म सोपान 'आनंद के वास्तविक स्वरूप' को समझना है। गीता इंद्रिय-सुख (Sensory Pleasure) और आत्मिक-आनंद (True Bliss) के मध्य एक स्पष्ट विभाजक रेखा खींचती है। आधुनिक समाज जिसे 'सुख' समझकर उसके पीछे भाग रहा है, वह वस्तुतः इंद्रियों का विषयों के साथ क्षणिक संयोग मात्र है, जो आदि और अंत वाला होने के कारण अंततः दुःख का ही कारण बनता है। इसके विपरीत, गीता जिस 'सात्विक आनंद' की चर्चा करती है, वह 'आत्म-प्रसाद' से उत्पन्न होता है। यह आनंद बाहरी उपलब्धियों या प्रशंसा का दास नहीं है, बल्कि यह वह आंतरिक उल्लास है जो विपरीत परिस्थितियों में भी अखंड बना रहता है। इस सूक्ष्म अंतर को समझना ही भारतीय ज्ञान परंपरा की वह कुंजी है, जो व्यक्ति को भौतिकवादी भटकाव से निकालकर स्थायी सुख की ओर ले जाती है।

साहित्यिक अनुगूँज: हिंदी साहित्य में 'गीता-तत्व' और आनंद की प्रतिष्ठा:

दर्शन जहाँ मस्तिष्क को विचार देता है, वहीं साहित्य हृदय को संवेदना प्रदान करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) का 'आनंदवाद' हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखंडों में एक मार्गदर्शक शक्ति के रूप में



विद्यमान रहा है। इस शोध खंड में हम गीता के सिद्धांतों और साहित्य के समन्वय का त्रि-आयामी विश्लेषण करेंगे:

छायावाद और समरसता का सिद्धांत:

जयशंकर प्रसाद की कालजयी कृति 'कामायनी' का 'आनंदवाद' प्रत्यक्षतः गीता के 'समत्व योग' (गीता, २.४८) का साहित्यिक विस्तार है। गीता जहाँ सुख-दुख और शीत-उष्ण में समान रहने की शिक्षा देती है, वहीं प्रसाद जी उसे 'समरसता' के रूप में परिभाषित करते हैं। कामायनी का नायक 'मनु' जब तक द्वंद्वों और अतिवादी भौतिकता में फंसा रहता है, वह अशांत है; किंतु जैसे ही वह इस सत्य को समझता है कि— "समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था", वह अखंड आनंद को प्राप्त होता है। यह तुलनात्मक विश्लेषण सिद्ध करता है कि गीता का 'योग' और प्रसाद का 'आनंद' एक ही सत्य के दो नाम हैं। इसके साथ ही, महादेवी वर्मा के काव्य में जो 'रहस्यवाद' और 'असीम के प्रति व्याकुलता' है, वह वस्तुतः गीता के 'भक्तियोग' का ही प्रतिबिंब है। जहाँ वे कहती हैं— "मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूँ", वहाँ वे उस आध्यात्मिक आनंद की ओर संकेत करती हैं जो सांसारिक संयोग-वियोग से परे है। यह 'दुख' में भी 'सुख' की अनुभूति करना ही गीता का 'विगतस्पृह' (आसक्ति रहित) होना है।

राष्ट्रकवि दिनकर और कर्म की गरिमा:

रामधारी सिंह दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से आधुनिक काल में गीता के कर्म-दर्शन को पुनः जीवंत किया। दिनकर जी ने स्पष्ट किया कि मानसिक शांति 'पलायन' या युद्ध से भागने में नहीं, बल्कि 'न्यायोचित कर्म' में निहित है। गीता के 'योगः कर्मसु कौशलम्' (गीता, २.५०) का अनुसरण करते हुए दिनकर यह संदेश देते हैं कि जब कर्म न्याय के लिए और आसक्ति से मुक्त होकर किया जाता है, तो वह तनाव का कारण नहीं बनता, बल्कि गौरव और शांति का आधार बनता है। 'भीष्म' और 'युधिष्ठिर' का संवाद वस्तुतः आधुनिक मानव के अंतर्द्वंद्व का ही चित्रण है, जिसका समाधान गीता के 'निष्काम कर्म' में मिलता है।

समकालीन साहित्य में लोकमंगल और 'सर्वभूतहिते रताः':

वर्तमान दौर की रचनाओं में भी गीता के 'सर्वभूतहिते रताः' (गीता, १२.४) अर्थात् 'प्राणिमात्र के कल्याण' का स्वर प्रधान है। समकालीन साहित्यकार यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्तिगत सुख की अवधारणा संकीर्ण है; वास्तविक आनंद 'लोकमंगल' या सर्वजन कल्याण में ही संभव है। जब आधुनिक कविता सामाजिक विषमता के विरुद्ध खड़ी होती है, तो वह अनजाने में गीता के 'लोकसंग्रह' के सिद्धांत को ही पुष्ट कर रही होती है। कबीर के 'सहज समाधि' से लेकर समकालीन जनवादी कविता तक, भारतीय



साहित्य ने सदैव यह प्रतिपादित किया है कि 'स्व' का 'सर्व' में विलय हो जाना ही आनंद की पराकाष्ठा है। यह साहित्यिक दृष्टि ही एक संतुलित समाज का निर्माण करती है, जहाँ व्यक्ति के अधिकार और समाज के हित में एक सुंदर समन्वय होता है।

IKS और नवयुवा पीढ़ी: 'तनाव' से 'उत्कर्ष' की ओर:

भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) केवल प्राचीन ग्रंथों का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि यह जीवन के कठिनतम संघर्षों में मार्गदर्शन करने वाली एक जीवंत पद्धति है। आज की नवयुवा पीढ़ी, जो सूचनाओं के विस्फोट और तीव्र वैश्विक प्रतिस्पर्धा के मध्य जी रही है, उसके लिए गीता के सूत्र एक 'सुरक्षा कवच' की भाँति हैं। इस खंड में हम युवाओं की समकालीन समस्याओं के समाधान हेतु गीता के व्यावहारिक दृष्टिकोण का विश्लेषण करेंगे:

प्रतिस्पर्धात्मक युग और 'निष्काम कर्म':

वर्तमान समय में युवाओं के तनाव का सबसे मुख्य कारण कार्य से अधिक 'परिणाम की आसक्ति' है। जब लक्ष्य केवल उपलब्धि (Outcome) बन जाता है, तो कार्यक्षमता (Efficiency) में स्वतः ही गिरावट आने लगती है। गीता का 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' (गीता, २.४७) का सिद्धांत आलस्य का त्याग कर 'सर्वोच्च कार्यक्षमता' प्राप्त करने का वैश्विक सूत्र है। यह युवाओं को सिखाता है कि जब हम भविष्य की चिंता और परिणाम के मोह को छोड़ देते हैं, तो हमारी संपूर्ण ऊर्जा 'वर्तमान प्रक्रिया' में लग जाती है। यही वह मानसिक स्थिति है जिसे आधुनिक मनोविज्ञान में 'स्टेट ऑफ फ्लो' (State of Flow) कहा जाता है, जहाँ व्यक्ति मानसिक बोझ से मुक्त होकर अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर पाता है।

एकाग्रता का प्रबंधन और डिजिटल भटकाव:

इस 'डिजिटल युग' में 'भटकाव' (Distraction) सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरा है। युवाओं की एकाग्रता निरंतर भंग हो रही है, जिससे 'मानसिक बिखराव' और अवसाद की स्थिति उत्पन्न होती है। भगवान कृष्ण ने हजारों वर्ष पूर्व अर्जुन के इस प्रश्न का समाधान दिया था कि चंचल मन को कैसे स्थिर किया जाए। उनका सूत्र था— 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते' (गीता, ६.३५)। आज के संदर्भ में 'अभ्यास' का अर्थ है—निरंतर मानसिक अनुशासन, और 'वैराग्य' का अर्थ है—उन अनावश्यक सूचनाओं और आभासी (Digital) शोर से विरक्ति जो हमारी चेतना को दूषित करते हैं। यह अभ्यास युवाओं को मानसिक सुदृढ़ता प्रदान कर उन्हें अपने लक्ष्यों के प्रति केंद्रित करता है।



मूल्य-परक शिक्षा और 'स्वधर्म' की पहचान:

आज का युवा अक्सर करियर के चुनाव में सामाजिक दबाव और दूसरों की नकल का शिकार होता है, जिससे वह भीतर से सदैव असंतुष्ट रहता है। गीता का 'स्वधर्म' (गीता, ३.३५) का सिद्धांत प्रत्येक युवा को अपनी नैसर्गिक प्रकृति (Inherent Nature) और अद्वितीय कौशल को पहचानने की प्रेरणा देता है। "श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः..." का अर्थ है कि अपनी स्वभावज प्रतिभा के अनुसार कार्य करना, किसी दूसरे के सफल कार्य की नकल करने से कहीं अधिक श्रेयस्कर और आनंददायक है। जब शिक्षा केवल उपाधि (Degree) तक सीमित न रहकर 'मूल्य-परक' और 'स्वधर्म-आधारित' हो जाती है, तो युवाओं में वह चारित्रिक दृढ़ता आती है जो उन्हें केवल एक कुशल पेशेवर ही नहीं, बल्कि एक संतुलित और आनंदित व्यक्तित्व प्रदान करती है।

संतुलित समाज का ब्लूप्रिंट: एक स्वस्थ भविष्य का मार्ग

शोध का यह अंतिम चरण प्रतिपादित करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) का 'आनंदवाद' केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक स्वस्थ और संतुलित वैश्विक समाज के निर्माण का आधार है। एक प्रगतिशील समाज की परिकल्पना तभी साकार हो सकती है जब उसके घटक मानसिक और शारीरिक रूप से सुदृढ़ हों।

वैयक्तिक शांति से सामाजिक समरसता:

समाज का स्वरूप उसके नागरिकों की मानसिक स्थिति का प्रतिबिंब होता है। गीता का दर्शन यह स्पष्ट करता है कि अशांत व्यक्ति कभी समाज में शांति स्थापित नहीं कर सकता। जब व्यक्ति गीता के 'समत्व' भाव के माध्यम से भीतर से 'आनंदित' और स्थिर होता है, तो उसका प्रभाव उसके परिवेश पर पड़ता है। वैयक्तिक शांति ही सामाजिक समरसता की जननी है। जब मनुष्य का 'स्व' संतुलित होता है, तब वह ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिस्पर्धा के संकीर्ण दायरे से बाहर निकलकर 'समरस समाज' की रचना में योगदान देता है।

IKS और समग्र स्वास्थ्य (Holistic Health):

आधुनिक युग में 'लाइफस्टाइल डिसऑर्डर' (जीवनशैली जन्य रोग) सबसे बड़ी चुनौती हैं। गीता इस संदर्भ में 'युक्ताहारविहारस्य' (गीता, ६.१७) का वैज्ञानिक सूत्र प्रदान करती है। यह सूत्र 'समग्र स्वास्थ्य' (Holistic Health) का वह ब्लूप्रिंट है, जो आहार, विहार (मनोरंजन), कर्म और निद्रा के मध्य संतुलन की वकालत करता है। शोधपरक विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि यदि आधुनिक जीवनशैली में गीता के इस अनुशासन को समाहित किया जाए, तो शारीरिक रोगों के साथ-साथ 'बर्नआउट' और 'क्रोनिक स्ट्रेस' जैसी मानसिक



व्याधियों का जड़ से उन्मूलन संभव है। यह 'होलिस्टिक हेल्थ' ही एक उत्पादक और सुखी राष्ट्र का आधार है।

वैश्विक शांति के लिए गीता का संदेश:

वर्तमान विश्व जहाँ युद्ध और वैचारिक कट्टरता के दौर से गुजर रहा है, वहाँ गीता की 'वसुधैव कुटुंबकम्' की संकल्पना एक 'आनंदवादी समाधान' प्रस्तुत करती है। गीता हमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' (सभी प्राणियों को अपने समान देखना) की दृष्टि देती है। जब हम वैश्विक स्तर पर आनंद को केवल अपनी सीमा तक सीमित न रखकर 'सर्वजन सुखाय' के रूप में देखते हैं, तभी वास्तविक शांति संभव है। यह 'आनंदवादी दृष्टिकोण' ही धरातल पर वह करुणा और सहयोग ला सकता है, जिसकी आज वैश्विक शांति हेतु नितांत आवश्यकता है।

IKS और आनंदवाद के मार्ग में प्रमुख चुनौतियाँ

- भारतीय ज्ञान परंपरा के इन आदर्शों को वर्तमान सामाजिक और वैश्विक ढांचे में उतारना एक दुष्कर कार्य है, जिसके मार्ग में कुछ गंभीर चुनौतियाँ विद्यमान हैं:
- वैश्विक उपभोक्तावाद का प्रभाव: आज का युग 'उपभोक्तावादी संस्कृति' (Consumerism) से ग्रस्त है, जहाँ सुख को केवल भौतिक वस्तुओं के संग्रह से जोड़ा जाता है।
- शिक्षा का बाजारीकरण: वर्तमान शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य केवल 'आजीविका' (Employment) प्राप्त करना रह गया है।
- डिजिटल एल्गोरिदम और मानसिक एकाग्रता: आधुनिक तकनीक और सोशल मीडिया के एल्गोरिदम युवाओं के 'अटेंशन स्पैन' को निरंतर कम कर रहे हैं।
- दार्शनिक सिद्धांतों की गलत व्याख्या: अक्सर गीता के 'निष्काम कर्म' को लोग 'कर्महीनता' या 'लक्ष्यहीनता' समझ लेते हैं।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध का संपूर्ण विश्लेषण यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) का 'आनंदवाद' कोई अमूर्त दार्शनिक कल्पना नहीं, अपितु संतुलित जीवन जीने की एक अनिवार्य एवं वैज्ञानिक पद्धति है। श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से प्रतिपादित 'समत्व' और 'निष्काम कर्म' के सिद्धांत वर्तमान युग के मानसिक अवसाद, अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा और वैश्विक तनाव का सबसे तार्किक समाधान प्रस्तुत करते हैं। यह शोध इस महत्वपूर्ण तथ्य को रेखांकित करता है कि वास्तविक आनंद का आधार भौतिक संग्रह में



नहीं, बल्कि मानसिक स्थिरता और 'स्वधर्म' के पालन में निहित है, जो व्यक्ति को परिणाम की आसक्ति से मुक्त कर उसकी कार्यक्षमता को शिखर तक ले जाता है।

अतः यह शोध स्पष्ट रूप से अनुशासन करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के इन व्यावहारिक सूत्रों, विशेषकर 'युक्ताहार-विहार' और एकाग्रता प्रबंधन के प्राचीन विज्ञान को, आधुनिक शैक्षणिक पाठ्यक्रमों और सामाजिक संरचना का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाना चाहिए। ऐसा करके ही हम नवयुवा पीढ़ी को 'डिजिटल भटकाव' के संकट से निकालकर उनमें चारित्रिक दृढ़ता और आत्म-बोध जागृत कर सकते हैं। अंततः, वैश्विक प्रगति की परिभाषा को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता है, जहाँ केवल आर्थिक विकास को ही नहीं, बल्कि 'आंतरिक आनंद' और 'मानसिक शांति' को ही मानव विकास का वास्तविक मापदंड स्वीकार किया जाए। गीता का यह कालजयी दर्शन और साहित्य की मानवीय संवेदना मिलकर एक ऐसे समरस समाज का मार्ग प्रशस्त करते हैं, जहाँ भौतिक समृद्धि और आत्मिक संतोष का सुंदर समन्वय संभव हो सके। श्रीमद्भगवद्गीता का यह शाश्वत सूत्र ही एक स्वस्थ और संतुलित समाज की आधारशिला है:

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय । सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ (गीता, २.४८)

(अर्थ: हे धनंजय! तुम आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुए अपने कर्मों को करो, क्योंकि यह 'समत्व' (मानसिक संतुलन) ही योग कहलाता है।)

सुझावः

- मूल्य-परक शैक्षणिक एकीकरण: भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के सिद्धांतों को आधुनिक शिक्षा पद्धति में व्यावहारिक 'मेंटल वेलनेस' (Mental Wellness) मॉड्यूल के रूप में अनिवार्यतः शामिल किया जाना चाहिए।
- डिजिटल साक्षरता और वैराग्य: युवाओं को 'डिजिटल डिटॉक्स' और 'स्क्रीन-टाइम मैनेजमेंट' के आधुनिक संदर्भों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
- सफलता के मापदंडों का पुनर्मूल्यांकन: प्रगति का पैमाना केवल 'भौतिक उपलब्धि' को न मानकर व्यक्ति के 'आंतरिक आनंद' और 'मानसिक संतुलन' को बनाया जाना चाहिए।
- स्वधर्म-आधारित करियर परामर्श: करियर परामर्श में 'स्वधर्म' के सिद्धांत को प्राथमिकता दी जाए।



सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. गोयन्दका, ज. (2022). श्रीमद्भगवद्गीता: तत्त्वविवेचनी (32वाँ संस्करण). गीता प्रेस.
2. गुप्त, श. (2021). भारतीय ज्ञान परंपरा: एक परिचय. प्रभात प्रकाशन.
3. दिनकर, रा. धि. (2018). कुरुक्षेत्र. लोकभारती प्रकाशन.
4. द्विवेदी, ह. प्र. (2015). हिन्दी साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन.
5. प्रसाद, ज. (2019). कामायनी. भारती भंडार.
6. राधाकृष्णन, स. (2014). भारतीय दर्शन (भाग 1 एवं 2). राजपाल एंड संस.
7. शर्मा, न. (2020). श्रीमद्भगवद्गीता एवं तनाव प्रबंधन. विश्वविद्यालय प्रकाशन.
8. सिंह, का. (2017). भारतीय संस्कृति और आनंदवा

